विचार बिन्दु

मन की प्रसन्नता से समस्त मानसिक और शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं। –रामदास

पेंशन स्थगित वेतन है, सरकार की कृपा नहीं!

पेंशन किसी कर्मचारी को सेवानिवृत्ति के बाद सरकार अथवा नियोक्ता द्वारा दिया जाने वाला दान, अनुदान या उपकार नहीं है। यह उसके जीवनभर की सेवाओं के बदले मिलने वाले वेतन का वह हिस्सा है, जिसका भुगतान सेवा अवधि में न करके भविष्य के लिए स्थगित कर दिया गया है। इसलिए पेंशन को 'स्थगित वेतन' कहना पूरी तरह तर्कसंगत है। कर्मचारी अपनी युवावस्था और जीवन के सर्वाधिक उत्पादक वर्ष संस्थान को समर्पित करता है। उसके परिश्रम, अनुभव और सेवाओं से संस्थान तथा समाज लाभान्वित होते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन के माध्यम से उसे उसी अर्जित अधिकार का लाभ मिलता है। ऐसे में पेंशन का भुगतान रोकना केवल आर्थिक कठिनाई पैदा करना नहीं, बल्कि कर्मचारी के वर्षों के परिश्रम के प्रतिफल को अनिश्चितता में डालना है।

सेवा के बदले अधिकार, दया की अपेक्षा नहीं

जब कोई कर्मचारी सरकारी अथवा सार्वजनिक संस्थान में नियुक्त होता है, तब वह निर्धारित सेवा शर्तों के अंतर्गत अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करता है। वह नियमित रूप से कार्य करता है, अपने वेतन पर करों का भुगतान करता है और संस्थान के विकास में योगदान देता है। अनेक कर्मचारी पदोन्नति, स्थानांतरण तथा अन्य सेवा संबंधी परिस्थितियों के बीच अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए सेवानिवृत्ति तक सेवा करते हैं। पेंशन इसी दीर्घकालीन सेवा व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

यदि कर्मचारी को यह विश्वास ही न हो कि सेवानिवृत्ति के बाद उसे समय पर पेंशन मिलेगी, तो सामाजिक सुरक्षा की पूरी अवधारणा कमजोर हो जाती है। वृद्धावस्था में नियमित आय का सबसे विश्वसनीय साधन पेंशन है। इसी से भोजन, दवाइयों, आवास, बिजली-पानी और अन्य आवश्यक खर्चों की पूर्ति होती है। बढ़ती महँगाई तथा स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं के कारण वृद्धावस्था में नियमित आय का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

पेंशनभोगी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो बिना काम किए सरकार से धन माँग रहा हो। उसने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा सेवा में लगाया है और पेंशन उसी सेवा का अर्जित प्रतिफल है। इसलिए पेंशन को सरकारी खजाने पर अनावश्यक बोझ बताना उन कर्मचारियों के योगदान की उपेक्षा करना है, जिनकी मेहनत से प्रशासन, शिक्षा, अनुसंधान और सार्वजनिक सेवाओं का संचालन हुआ है।

न्यायपालिका ने भी माना पेंशन का महत्त्व

भारत में पेंशन के अधिकार को लेकर न्यायपालिका ने अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय दिए हैं। सर्वोच्च न्यायालय नेडी. एस. नकारा बनाम भारत संघ (1982)के ऐतिहासिक निर्णय में पेंशन को महज नियोक्ता की कृपा न मानते हुए सामाजिक सुरक्षा और गरिमापूर्ण वृद्धावस्था से जोड़ा। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि पेंशनभोगियों के साथ व्यवहार करते समय संवैधानिक समानता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों की अनदेखी नहीं की जा सकती।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि प्रत्येक पेंशन विवाद का निर्णय संबंधित सेवा नियमों, लागू कानूनों और तथ्यों के आधार पर होता है। फिर भी न्यायिक दृष्टिकोण का व्यापक संदेश स्पष्ट है–पेंशनभोगियों के अधिकारों और सम्मान की रक्षा करना एक न्यायपूर्ण व्यवस्था की जिम्मेदारी है।

संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या में गरिमापूर्ण जीवन का महत्त्व स्वीकार किया गया है। वहीं अनुच्छेद 14 समानता के सिद्धांत की रक्षा करता है। पेंशन संबंधी प्रत्येक मामले में इन प्रावधानों का अनुप्रयोग उसके तथ्यों और कानून के अनुसार होगा, लेकिन राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कर्मचारियों और पेंशनभोगियों के प्रति न्यायसंगत तथा संवेदनशील व्यवहार करे।

राजस्थान के विश्वविद्यालयों के पेंशनभोगियों की पीड़ा

पेंशन के सिद्धांत की वास्तविक परीक्षा तब होती है, जब किसी संस्थान के सेवानिवृत्त कर्मचारियों को अपनी अर्जित पेंशन प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़े। राजस्थान के कृषि विश्वविद्यालयों के पेंशनभोगियों की स्थिति इस समस्या का गंभीर उदाहरण है। महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर सहित राज्य के विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों के सेवानिवृत्त कर्मचारियों की पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों को लेकर लंबे समय से कठिनाइयाँ सामने आती रही हैं।

इन विश्वविद्यालयों के कर्मचारियों ने कृषि शिक्षा, अनुसंधान, प्रसार और किसानों की समस्याओं के समाधान मी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। कृषि वैज्ञानिकों ने नई तकनीकों के विकास, फसल उत्पादन बढ़ाने, मृदा स्वास्थ्य सुधारने और किसानों तक वैज्ञानिक जानकारी पहुँचाने के लिए दशकों तक काम किया। शिक्षकों ने विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया तथा गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों ने संस्थानों के संचालन में योगदान दिया। लेकिन सेवानिवृत्ति के बाद यदि इन्हीं कर्मचारियों को पेंशन के लिए कार्यालयों के चक्कर लगाने पड़ें, तो यह व्यवस्था की गंभीर विफलता है।

जय नारायण विश्व विद्यालय, जोधपुर के पेंशनर को छह माह से पेंशन नहीं मिलने के कारण संघर्षरत है सभी पेंशनर विशेष रूप से पारिवारिक पेंशनर सबसे अधिक पीड़ित है और गंभीर वित्तीय संकट का सामना कर रहे हैं। राज्य सरकार एवं राजनीतिक प्रतिनिधि मदद के लिए आगे नहीं आ रहे हैं क्योंकि उनका मानना है कि विश्वविद्यालय के शिक्षक कोई महत्वपूर्ण वोट बैंक नहीं है। परन्तु राज्य सरकार को समझना होगा कि पेंशनरों को नियमित पेंशन का भुगतान करना सरकार का वैद्यानिक दायित्व है।

पेंशनभोगी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो बिना काम किए सरकार से धन माँग रहा हो। उसने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा सेवा में लगाया है और पेंशन उसी सेवा का अर्जित प्रतिफल है। इसलिए पेंशन को सरकारी खजाने पर अनावश्यक बोझ बताना उन कर्मचारियों के योगदान की उपेक्षा करना है, जिनकी मेहनत से प्रशासन, शिक्षा, अनुसंधान और सार्वजनिक सेवाओं का संचालन हुआ है।

विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता का हवाला देकर राज्य सरकार अपनी जिम्मेदारी से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकती। दूसरी ओर, विश्वविद्यालयों की सीमित आय का तर्क देकर पेंशनभोगियों को भुगतान से वंचित रखना भी न्यायोचित समाधान नहीं है। जब किसी विश्वविद्यालय की आय नियमित पेंशन भुगतान के लिए पर्याप्त नहीं है, तो राज्य सरकार और विश्वविद्यालय प्रशासन को मिलकर स्थायी वित्तीय व्यवस्था बनानी चाहिए।

यह समस्या केवल लेखा-जोखा अथवा प्रशासनिक प्रक्रिया का विषय नहीं है। इसके पीछे हजारों परिवारों की आजीविका, सम्मान और भविष्य जुड़ा हुआ है। पेंशन में देरी का अर्थ है दवाइयों में कटौती, आवश्यक खर्चों में कमी और वृद्धावस्था में मानसिक तनाव। जिन लोगों ने जीवनभर संस्थान की सेवा की, उन्हें जीवन के अंतिम पड़ाव में आर्थिक असुरक्षा का सामना करना पड़े, यह किसी भी कल्याणकारी व्यवस्था के लिए चिंताजनक स्थिति है।

समाधान के लिए ठोस कदम जरूरी

इस समस्या का स्थायी समाधान केवल आश्वासन देने से नहीं होगा। इसके लिए कुछ ठोस कदम उठाने होंगे।

पहला, राजस्थान सरकार को कृषि विश्वविद्यालयों के पेंशन भुगतान की जिम्मेदारी और वित्तीय व्यवस्था के संबंध में स्पष्ट नीति बनानी चाहिए। विश्वविद्यालयों की वास्तविक आय, पेंशन देनदारियों और भविष्य की आवश्यकताओं का स्वतंत्र आकलन कराया जाए।

दूसरा, नियमित पेंशन भुगतान के लिए समर्पित पेंशन निधि अथवा अन्य विश्वसनीय वित्तीय व्यवस्था विकसित की जाए। राज्य सरकार और विश्वविद्यालयों के बीच अनुदान, योगदान तथा भुगतान की जिम्मेदारियाँ स्पष्ट हों, ताकि प्रत्येक माह पेंशन के लिए अनिश्चितता न रहे।

तीसरा, बकाया पेंशन, महँगाई राहत और अन्य स्वीकृत लाभों के भुगतान के लिए समयबद्ध कार्ययोजना घोषित की जाए। पात्रता और लागू नियमों के अनुसार भुगतान की स्थिति सार्वजनिक की जाए तथा विलंब के कारणों की जवाबदेही तय हो।

चौथा, पेंशनभोगियों की शिकायतों के निस्तारण के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर विशेष प्रकोष्ठ बनाया जाए। शिकायत प्राप्त होने, दस्तावेज पूरे होने और निर्णय होने की समय-सीमा निर्धारित की जाए। वृद्ध पेंशनभोगियों को सामान्य प्रशासनिक प्रक्रिया में अनावश्यक रूप से उलझाने से बचाया जाए।

पाँचवाँ, राज्य सरकार को सभी कृषि विश्वविद्यालयों की समस्याओं का संयुक्त अध्ययन कर समानता, वित्तीय स्थिरता और कानूनी दायित्वों पर आधारित दीर्घकालीन नीति तैयार करनी चाहिए। जहाँ न्यायालय के आदेश लागू हों, वहाँ उनका समय पर पालन सुनिश्चित किया जाए।

सरकार की विश्वसनीयता की कसौटी

किसी सरकार की संवेदनशीलता का आकलन केवल नई योजनाओं की घोषणाओं से नहीं किया जा सकता। यह भी देखना होगा कि वह उन नागरिकों और कर्मचारियों के साथ कैसा व्यवहार करती है, जिन्होंने अपना जीवन सार्वजनिक सेवा में लगा दिया। पेंशनभोगियों की समस्याओं का समाधान सरकार पर कोई अतिरिक्त कृपा नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण प्रशासन और सामाजिक सुरक्षा की दिशा में आवश्यक कदम है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि पेंशन को खर्च की ऐसी मद न माना जाए जिसे वित्तीय कठिनाई के समय टाला जा सकता है। पेंशन देनदारियों का अनुमान समय रहते लगाना, पर्याप्त धन की व्यवस्था करना और भुगतान नियमित रखना सरकार तथा विश्वविद्यालय प्रशासन की जिम्मेदारी है। संस्थान की वित्तीय समस्याओं का समाधान पेंशनभोगियों की आजीविका को अनिश्चित बनाकर नहीं किया जाना चाहिए।

अंततः प्रश्न केवल पेंशन की राशि का नहीं, बल्कि उस विश्वास का है जिसके आधार पर कर्मचारी अपना पूरा जीवन संस्थान को समर्पित करता है। यदि सेवानिवृत्ति के बाद उसे अपनी अर्जित पेंशन के लिए संघर्ष करना पड़े, तो सेवा व्यवस्था का भरोसा कमजोर होता है।

पेंशन कोई खैरात नहीं, जीवनभर की सेवा का प्रतिफल है। यह स्थगित वेतन है, जिसे समय पर लौटाना नियोक्ता का दायित्व है। राजस्थान सरकार और कृषि विश्वविद्यालयों को इस सिद्धांत को व्यवहार में उतारना चाहिए। पेंशनभोगियों को आश्वासन नहीं, नियमित भुगतान चाहिए; सहानुभूति के शब्द नहीं, उनके अधिकारों का सम्मान चाहिए। यही सामाजिक न्याय है और यही एक संवेदनशील, जवाबदेह तथा कल्याणकारी शासन की पहचान होनी चाहिए।

–अतिथि सम्पादक,
प्रोफेसर (डा.) पी. सी. कंठालिया
पूर्व विभागाध्यक्ष (मृदा विज्ञान) एवं मुख्य वैज्ञानिक
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

मतदाता सूची का शुद्धिकरण: सवाल चुनाव आयोग पर नहीं, व्यवस्था को बेहतर बनाने पर होना चाहिए

रोटेरियन सुनील दत्त गोयल

देश में मतदाता सूची के पुनरीक्षण को लेकर राजनीतिक बहस एक बार फिर तेज हो गई है। चुनाव आयोग और मुख्य चुनाव आयुक्त को लेकर लगातार सवाल उठाए जा रहे हैं। लोकतंत्र में चुनाव आयोग से सवाल पूछना और उसकी कार्यप्रणाली की आलोचना करना पूरी तरह जायज है, लेकिन क्या मतदाता सूची के पुनरीक्षण जैसी सामान्य और आवश्यक प्रक्रिया को ही राजनीतिक विवाद का विषय बना देना उचित है? इस पूरे विषय को समझने के लिए हमें कुछ व्यावहारिक सवालों पर ध्यान देना होगा।

क्या पिछले 20-25 वर्षों में देश में लोगों की मृत्यु नहीं हुई? क्या नए मतदाता पैदा नहीं हुए? क्या लोगों ने अपने शहर और राज्य नहीं बदले? क्या महिलाओं की शादी के बाद उनका निवास स्थान नहीं बदलता? क्या बच्चे पढ़ाई और नौकरी के लिए दूसरे शहरों में नहीं जाते? क्या सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के लगातार तबादले नहीं होते?

इन सवालों का जवाब स्पष्ट है। देश में करोड़ों लोग पिछले कुछ दशकों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर गए हैं। ऐसे में यदि मतदाता सूची में पुराने पते पर नाम बने रह जाते हैं या किसी व्यक्ति का नाम एक से अधिक स्थानों पर दर्ज हो जाता है, तो इसका समाधान मतदाता सूची को शुद्ध करना ही है।

कुछ सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारियों के साथ हुई चर्चा में इस समस्या का एक दिलचस्प और व्यावहारिक उदाहरण सामने आया। सरकारी अधिकारियों की सेवा में दो-तीन या चार वर्ष में तबादले होना सामान्य बात रही है। कोई अधिकारी जोधपुर में रहा, फिर उदयपुर चला गया, उसके बाद अजमेर, बीकानेर या जयपुर जैसे किसी दूसरे शहर में पदस्थापित हो गया। इसी तरह केंद्रीय सेवाओं के अधिकारियों का कैडर या कार्यस्थल भी बदल सकता है। सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों की अलग-अलग शहरों में विभागीय कॉलोनियां होती हैं। किसी जगह सिविल लाइंस, किसी अन्य सरकारी विभागों की कॉलोनियां होती हैं। जब मतदाता सूची के पुनरीक्षण की प्रक्रिया होती थी, तब इन कॉलोनियों में रहने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों के नाम स्थानीय मतदाता सूची में दर्ज हो जाते थे। समस्या यह है कि बाद में जब अधिकारी का तबादला हो गया, तो पुराने स्थान की मतदाता सूची से नाम हटना हमेशा उतनी आसानी से नहीं हुआ।

मतदाता सूची में पुराने नाम बने रहने का एक बड़ा कारण महिलाओं का विवाह के बाद स्थान परिवर्तन भी हो सकता है। एक महिला विवाह से पहले अपने माता-पिता के शहर में रहती है। विवाह के बाद उसका स्थायी या सामान्य निवास किसी दूसरे शहर या राज्य में हो सकता है। ऐसी स्थिति में पुराने स्थान की मतदाता सूची से नाम हटाकर नए स्थान पर नाम दर्ज करवाना आवश्यक है।

इसी तरह हजारों-लाखों परिवारों में बच्चे पढ़ाई या नौकरी के लिए दूसरे शहरों में चले जाते हैं। कुछ लोग कुछ वर्षों के लिए दूसरे शहर में रहते हैं और फिर वापस लौट आते हैं। कुछ लोग स्थायी रूप से वहीं बस जाते हैं।

मतदाता सूची से जुड़े पुराने रिकॉर्ड की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि किसी व्यक्ति का पुराना नाम हमेशा अपने आप समाप्त नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति एक शहर से दूसरे शहर चला गया और उसने नए स्थान पर नाम दर्ज करा लिया, लेकिन पुराने स्थान की सूची से नाम नहीं हटवाया, तो दोनों जगह रिकॉर्ड मौजूद रह सकता है। एक व्यक्तिगत उदाहरण इसी समस्या को और स्पष्ट करता है। संबंधित व्यक्ति ने अलग-अलग स्थानों पर दर्ज अपने नामों को बाद में हटवाने की कोशिश की और पाया कि पुराने रिकॉर्ड कई स्थानों पर अभी भी मौजूद थे। इस तरह की स्थिति को केवल राजनीतिक दृष्टि से देखने के बजाय प्रशासनिक और तकनीकी समस्या के रूप में देखना ज्यादा उपयोगी होगा।

यदि किसी मतदाता सूची में पुराने, मृत, स्थानांतरित या दोहराए गए नाम मौजूद हैं, तो उनका सत्यापन और सुधार होना चाहिए। इसे लोकतंत्र के खिलाफ प्रक्रिया मानने के बजाय मतदाता सूची को अधिक सटीक बनाने की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। इसे व्यापक स्तर पर मतदाता सूची के पुराने रिकॉर्ड की खामियों को उजागर करने और शुद्धिकरण की प्रक्रिया के रूप में देखने की बात कही गई है।

लेकिन इसके साथ एक महत्वपूर्ण सवाल चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली पर भी उठता है। यदि किसी नागरिक को अपना नाम हटवाने, पता बदलवाने या नया मतदाता पहचान पत्र प्राप्त करने में वर्षों लग जाएं, तो नागरिकों का व्यवस्था पर भरोसा प्रभावित होना स्वाभाविक है।

लेखक ने स्वयं दो साल पहले नया मतदाता पहचान पत्र प्राप्त करने के लिए चुनाव आयोग की वेबसाइट पर आवेदन किया था, लेकिन प्राप्ति का इंतज़ार अभी बाकी है। यही वह क्षेत्र है जहां चुनाव आयोग को तकनीक का अधिक प्रभावी इस्तेमाल करना चाहिए। चुनाव आयोग को भी तकनीकी युग के साथ आगे बढ़ना होगा

आज जब बैंकिंग, रेलवे, पासपोर्ट और आयकर जैसी सेवाएं डिजिटल हो चुकी हैं, तो मतदाता सूची की प्रक्रिया भी आधुनिक, सरल और त्वरित होनी चाहिए। जैसे आधार सेवा केंद्रों के माध्यम से सुविधाएं मिलती हैं, वैसे ही मतदाता सूची में नाम जोड़ने, हटाने और स्थानांतरण की पूरी प्रक्रिया ऑनलाइन होनी चाहिए।

नागरिक अपने नाम, पते और मतदाता स्थिति की जानकारी ऑनलाइन देख सकें तथा आवश्यक सुधार के लिए आवेदन कर सकें। कानून और गोपनीयता का ध्यान रखते हुए विभिन्न सरकारी रिकॉर्ड के बीच बेहतर तकनीकी समन्वय से एक व्यक्ति का नाम कई स्थानों पर दर्ज रहने की समस्या भी कम की जा सकती है। इसके लिए चुनावी और प्रशासनिक व्यवस्था को लगातार तकनीकी रूप से अपडेट करना होगा।

चुनाव आयोग की आलोचना तथ्यों के आधार पर हो और आयोग से पारदर्शिता, जवाबदेही तथा बेहतर तकनीकी व्यवस्था की मांग की जानी चाहिए। लेकिन मतदाता सूची में वास्तविक समस्याएं हैं तो केवल राजनीतिक विवाद के कारण उनके पुनरीक्षण को रोकना समाधान नहीं है। बेहतर व्यवस्था यह होगी कि मतदाता सूची का नियमित और पारदर्शी पुनरीक्षण हो, नागरिकों को पर्याप्त समय मिले, दावे-आपत्तियों की सरल ऑनलाइन व्यवस्था हो और किसी वास्तविक मतदाता का नाम गलती से हटने पर प्रभावी अपील का अवसर उपलब्ध हो।

एक व्यावहारिक सुझाव यह है कि मतदाता सूची का व्यापक पुनरीक्षण प्रत्येक पांच वर्ष में हो। इसके बीच नागरिकों को स्थान परिवर्तन, मृत्यु, विवाह, नए मतदाता बनने या अन्य आवश्यक सुधारों की जानकारी आसानी से ऑनलाइन अपडेट करने की सुविधा मिले। मतदाता सूची को सही रखना केवल चुनाव आयोग की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि नागरिक और प्रशासन की साझा जिम्मेदारी है। आयोग को प्रक्रिया सरल, पारदर्शी और तकनीकी रूप से सक्षम बनानी होगी, वहीं नागरिकों को भी अपने मतदाता रिकॉर्ड को सही रखने में सक्रिय भूमिका निभानी होगी। लोकतंत्र की मजबूती के लिए जरूरी है कि मतदाता सूची सटीक हो, वास्तविक मतदाता उसमें दर्ज हों और पुराने या गलत रिकॉर्ड समय पर सुधारे जाएं। इसलिए पुनरीक्षण को राजनीतिक विवाद का विषय बनाने के बजाय इसे मतदाता सूची को अधिक पारदर्शी, विश्वसनीय और नागरिकों के लिए सुविधाजनक बनाने के अवसर के रूप में देखा जाना चाहिए।

सवाल यह नहीं होना चाहिए कि मतदाता सूची का शुद्धिकरण क्यों हो रहा है। सवाल यह होना चाहिए कि इसे और अधिक पारदर्शी, सटीक और विश्वसनीय कैसे बनाया जाए।

–रोटेरियन सुनील दत्त गोयल,
महानिदेशक, इम्पीरियल चैंबर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री।

संवैधानिक नैतिकता चौराहे पर-न्यायिक औचित्य, संस्थागत विश्वास और विधि का शासन

सूर्य प्रताप सिंह राजावत

सर्वोच्च न्यायालय के किसी कार्यरत न्यायाधीश द्वारा ऐसे विषय पर टिप्पणी करना, जो उनके समक्ष विचाराधीन नहीं है-क्या यह न्यायिक औचित्य की सीमाओं के भीतर आता है? क्या यह न्यायिक आत्म-संयम के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं है? क्या यह संवैधानिक नैतिकता के एक मूलभूत सिद्धांत का उल्लंघन नहीं है? यहाँ न्यायिक दृष्टांत के सिद्धांत पर चर्चा करना प्रासंगिक है। संविधान पीठ ने 1965 1767 के मामले में कहा था- इस बात पर बल देने की आवश्यकता शायद ही हो कि न्यायिक औचित्य और शिष्टाचार की दृष्टि से यह आवश्यक है कि यदि किसी मामले की सुनवाई कर रहे विद्वान एकल न्यायाधीश का यह मत हो कि उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों-चाहे वे खंडपीठ के हों या एकल न्यायाधीश के-पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है, तो उन्हें एकल न्यायाधीश के रूप में बैठकर उस प्रश्न की जाँच प्रारंभ नहीं करनी चाहिए, बल्कि मामले को खंडपीठ के समक्ष भेजना चाहिए या, उचित मामले में, संबंधित अभिलेख मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करने चाहिए, ताकि वे इस प्रश्न की जाँच के लिए एक बड़ी पीठ का गठन कर सकें। ऐसे मामलों से निपटने का यही उचित और पारंपरिक तरीका है तथा यह न्यायिक शिष्टाचार और औचित्य के स्वस्थ सिद्धांतों पर आधारित है। अतः न्यायमूर्ति उज्जल भुइयां द्वारा की गई टिप्पणियाँ न्यायिक अनुचितता की सीमा के निकट आती हुई प्रतीत होती हैं। यह कहा जा सकता है कि न्यायमूर्ति भुइयां को भारत के संविधान के अधीन उन्हें दिलाई गई शपथ की याद दिलाए जाने की आवश्यकता है।

अब सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति लोकुर तथा अन्य सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की प्रतिक्रिया पर विचार कीजिए, जिन्होंने निर्वाचन आयोग के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जाँच के लिए एक आयोग का गठन किया है। यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि जब यही विषय भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है और मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पीठ को अंतरिम उपाय के लिए कोई पर्याप्त आधार संतोषजनक रूप से प्राप्त नहीं हुआ है, तब उसी विषय-वस्तु पर एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश द्वारा आयोग का नेतृत्व किया जाना ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होंने न्यायिक संयम और न्यायिक औचित्य की उपेक्षा की हो।

यह न्यायपालिका की संस्था के प्रति अविश्वास के मत के समान प्रतीत होता है। उपर्युक्त स्थिति उन व्यक्तियों द्वारा विधि के शासन के प्रति अविश्वास की आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है, जो स्वयं न्यायिक बिरादरी का हिस्सा रहे हैं। एक कार्यरत न्यायाधीश हैं और दूसरे एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश। यह कहा जा सकता है कि दोनों न्यायाधीशों के आचरण से उनकी गरिमा प्रभावित हुई है और न्यायपालिका के प्रति, तथा न केवल सर्वोच्च न्यायालय बल्कि निर्वाचन आयोग जैसी संवैधानिक संस्था के प्रति भी, जनता के विश्वास को आघात पहुँचाने का प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस चर्चा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी और मीडिया की भूमिका का उल्लेख किए बिना बात अधूरी रहेगी।

निर्वाचन आयोग के इस्तीफे की माँग भारत के संविधान के प्रति विश्वास में कमी, विधि के शासन में विश्वास के अभाव तथा न्यायपालिका में विश्वास की कमी की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वे निर्वाचन आयोग के पदाधिकारियों को हटाने की उस संवैधानिक प्रक्रिया से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं, जो संवैधानिक ढाँचे के भीतर निर्धारित है और संवैधानिक पदाधिकारियों पर लागू सुरक्षा-व्यवस्था को प्रतिबिंबित करती है। यह लोकतंत्र के प्रति विश्वास की कमी का संकेत है और संवैधानिक संस्थाओं का अपमान है।

इस पूरे घटनाक्रम में मीडिया को भी निर्वाचन आयोग से संबंधित मामले की सुनवाई के दौरान भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियों और मौखिक टिप्पणियों को प्रस्तुत करने के लिए पूरी तरह दोषमुक्त नहीं किया जा सकता। न्यायालय की कार्यवाही का विवेकपूर्ण मूल्यांकन किए बिना, बार और बेंच के बीच हुई बातचीत को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है मानो वे न्यायालय के निष्कर्ष हों। किंतु यदि ऐसी टिप्पणियाँ न्यायिक आदेश में कहीं दर्ज नहीं हैं, तो उन्हें अंतिम न्यायिक निर्धारण के समान कानूनी पवित्रता प्राप्त नहीं होती और उन्हें न्यायिक रूप से अंतिम निष्कर्ष नहीं माना जा सकता। लोकतंत्र में विरोध के नाम पर और उपर्युक्त घटनाक्रम को देखते हुए, सेवानिवृत्त न्यायाधीशों और नौकरशाहों के एक समूह ने निर्वाचन आयोग पर किए जा रहे हमले की निंदा करते हुए एक पत्र लिखा है। यहाँ उन सेवानिवृत्त सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के आचरण और भूमिका को लेकर भी प्रश्न उठता है, जो निर्वाचन आयोग के समर्थन में सामने आए हैं।

जिस प्रकार शांति की नैतिकता और युद्ध की नैतिकता को समान नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार विभिन्न संवैधानिक पदाधिकारियों के आचरण का मूल्यांकन भी उस परिस्थिति और संदर्भ के आधार पर किया जान चाहिए, जिसमें वे कार्य करते हैं। इसलिए, दूसरे समूह का स्वागत किया जाना चाहिए। उन्होंने भारत में उपलब्ध चुनावी सुरक्षा उपायों का उल्लेख किया है, जिनमें मतदान केंद्रों पर मतदान एजेंटों की उपस्थिति, इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों से संबंधित उचित प्रश्नों का उत्तर देने की तत्परता, की सीलिंग और सुरक्षित अभिरक्षा, स्ट्रॉन्ग रूम की व्यवस्था तथा वोटर वेरिफाएबल पेपर ऑडिट ट्रेल प्रणाली के माध्यम से सत्यापन शामिल हैं। यह स्मरण रखना उचित है कि अच्छे लोगों की चुप्पी बुराई को अपने अनुचित उद्देश्यों को जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करती है। अतः उच्च सदुणों वाले लोगों को अपनी क्षमता के अनुपात में और संवैधानिक औचित्य की सीमाओं के भीतर संवैधानिक संस्थाओं की रक्षा करनी चाहिए।

मुझे डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की वह बात स्मरण होती है, जिन्होंने 4 नवम्बर 1948 को कहा था कि भारत में संवैधानिक नैतिकता कोई स्वाभाविक भावना नहीं है; इसे विकसित करना पड़ता है। इसके पश्चात्, 25 नवम्बर 1949 को उन्होंने संविधान सभा को सचेत करते हुए कहा कि भारत गणराज्य को तीन महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए। प्रथम, नायक-पूजा को संविधान के उद्देश्यों और आदर्शों की कीमत पर आगे नहीं बढ़ने दिया जाना चाहिए। द्वितीय, सामाजिक लोकतंत्र को समानता और स्वतंत्रता के आधार-स्तम्भ के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए। और, सबसे महत्वपूर्ण, भारत गणराज्य में गैर-संवैधानिक उपायों का सहारा लेने का कोई भी प्रयास, जिसमें ऐसे उपायों की तुलना गांधीजी के आंदोलनों से करना अथवा निर्वाचित प्रतिनिधि सरकार की तुलना ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से करना शामिल है, भारत द्वारा प्राप्त स्वतंत्रता की मूल भावना को समझने में एक गंभीर भूल होगी। अतः उनकी चेतावनी केवल राजनीतिक तरीकों तक सीमित नहीं थी; वह संवैधानिक लोकतंत्र और संवैधानिक तरीकों में आस्था को बनाए रखने के बारे में थी।

–सूर्य प्रताप सिंह राजावत,
अधिवक्ता राजस्थान उच्च न्यायालय जयपुर

श्री महाकाली मंदिर अखाड़ा डीडवाना, जहां स्वतः निकलती है फर्श से भभूत

मंत्र-मनीषियों के चिर साधना का मुख्य स्थान, पौराणिक आभानगरी (डीडवाना) के स्थापना काल में स्थापित महाकाली मंदिर अखाड़ा जन मानस के लिए अपार श्रद्धा का केंद्र है। आभा नगरी के मूल स्थापना स्थान सिंगी बास के पास से उस समय बहने वाली सरस्वती नदी के किनारे से सटे भाटी-बास में महायोगी गुरु गोरखनाथ के समय दो हजार से भी ज्यादा वर्षों से पहले स्थापित सिद्ध शक्ति स्थल नाथ योगियों, सिद्ध संतों व अनेक महात्माओं के द्वारा चमत्कारों का केंद्र रहा है। इस स्थल पर प्राप्त इतिहास में प्राणी मात्र को जगताप से हटा, योगामृत पिलाने व उन पर आने वाले घात प्रतिघात का प्रतिरोध करने वाला यह स्थान, अनेक गरिमाओं व महिमाओं से अलंकृत है। साबर साधना के रूप में जनमानस की सतत आस्थाओं से ओत-प्रोत,

इस मंदिर में अखंड शक्तियों के साक्षात प्रमाण मौजूद हैं।

विक्रम संवत 1016 में यहां औघड़ संत बिकाराम द्वारा साबर साधना के प्रभाव से 6 माह तक बिना अन्न जल गृहण किए सतत साधना करते रहने का प्रमाण हैं। उल्लेखनीय है कि अंतिम रूप से मंदिर की वर्तमान अर्चक पीढ़ी ने 17 मई 2001 को 18 जून 2013 को राजा गोपीचंद भरतरी को सिंह के साथ मंदिर परिसर में शाय काल में देखा है। परिसर में उनके नाम पर बने चबूतरे पर बैठने के बाद अंतर्ध्यान हो गए। इसी पीढ़ी की एक महिला द्वारा अपने दिन तीन दिन के शिशु को कमर में बांधकर नगर में आए टीड्डी-दल को अपनी मंत्र शक्ति से घड़े में कैद कर नागोरी गेट में घड़े के धीरघने (मुंह) में से निकाला था। अंग्रेज अफसर को प्रभावित करने वाले इस कृत्य ने क्षेत्र में हजारों मण धान को भी नष्ट होने से बचाया था। जो बाद में किसानों का आस्था का केंद्र बन गया। साबर साधना के चमत्कारिक प्रमाण आज भी प्रत्यक्ष रूप में इस मंदिर में विद्यमान है। भूत प्रेत एवं अप्राकृतिक रूप से मनुष्य योनियों को सताने वाली आत्माएं रात्रि पूजन के समय मां काली से अपनी मुक्ति की याचना करती है। इन आत्माओं के साथ वर्तमान अर्चक के कई दुर्लभ चित्र है एवं इनका वैज्ञानिक आधार जानने के लिए शोध कर रहे हैं। इन चमत्कारों को यहां प्रमाण रूप में देखा जा सकता है, वह है, इसके मार्बल जड़ित आंगन में घृत व विभूति का निकलना। कहते हैं कि आंगन में निकली इस भभूति को लगाने से अनेक असाध्य रोगों से मुक्ति मिलती है।

राशिफल

पंडित अनिल शर्मा

गुरूवार 15 अक्टूबर, 2026

आश्विन मास, शुक्ल पक्ष, पंचमी तिथि, गुरूवार, विक्रम संवत-2083, ज्येष्ठा नक्षत्र शुक्रवार प्रातः 6:48 तक, सौभाग्य योग रात्रि 9:15 तक, बव करण दिन 2:20 तक, चन्द्रमा आज वृश्चिक राशि में संचार करेगा।

ग्रह स्थिति– सूर्य-कन्या, चन्द्रमा-वृश्चिक, मंगल-कर्क, बुध-तुला, गुरू-कर्क, शुक्र-तुला, शनि-मीन, राहु-कुम्भ, केतु-स